कैलाश नारायण तिवारी के काव्य में राजनीतिक चेतना

दीपा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007
deepa92688@gmail.com

'हटो हटो ! कुछ कहने दो' कैलाश नारायण तिवारी का काव्य संग्रह है। जैसा कि संग्रह के नाम से ही स्पष्ट है कि कोई कह रहा है - हटो हटो ! कुछ कहने दो। वह कौन है? जो यह कह रहा है। किससे कह रहा है? क्यों कह रहा है? यहाँ दो व्यक्ति प्रमुख हैं। एक-आम जन यानी जनता का प्रतीक। जो जनता की आवाज का प्रतिनिधित्व कर रहा है। कवि जनता की आवाज है। दूसरा- पूंजीपति और सत्ताधारी वर्ग यानी नेता। जो संसद में जनता के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। पूंजीपति वर्ग का संरक्षण करता है तथा उसके साथ मिलकर आम आदमी का शोषण करता है।

यहाँ कहने वाले की वाणी में निवेदन नहीं, न ही आग्रह है अपितु अधिकार और हक है। क्योंकि वह स्वतंत्र भारत का जागरूक नागरिक है जो राजनीतिक और जनतंत्र की भ्रष्ट, अमानवीय और मानवद्रोही करतूतों को उजागर कर रहा है।

भारत कृषि प्रधान देश है। देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी आज भी कृषि पर निर्भर है। किंतु किसानों की परिस्थिति अत्यंत दयनीय एवं शोचनीय है। वह खेतों में चिलचिलाती धूप में मेहनत करके सबके खाने के लिए अन्न उगाता है। लेकिन भूखों मरता है। उसके श्रम एवं फसल की आधी कीमत भी उसे नहीं मिलती। प्रकृति का कहर भी उसके ऊपर ही टूटता है। अतिवृष्टि के कारण उसकी फसल बर्बाद हो जाती है। फिर भी सरकार की ओर से उसे आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती। फलस्वरूप उसे आत्महत्या का रास्ता अपनाना पड़ता है क्योंकि शासनतंत्र उसकी दुर्दशा, वेदना और पीड़ा का मूक दर्शक बनकर चुप बैठा रहता है।

"खेती उसकी नभ पर निर्भर
जीवन जीना उसका दूभर
उसने तो उगाया धूल से धन
और बचा लिया सबका जीवन
फिर वही यहाँ क्यों रोता है?
इसलिए कि राज्य भी सोता है।"[1]

किसानों की यह दुर्दशा आर्थिक समस्या से कही अधिक राजनीतिक समस्या है। किंतु भ्रष्ट नेताओं को किसानों से कोई सरोकार नहीं। वह तो पूंजीपति वर्ग के साथ मिलकर अपनी तिजोरियां भरने में लगे रहते हैं। इसलिए कवि जनता के उत्पीड़न को देखकर भ्रष्ट दुकानदार सेठ यानी पूंजीपति वर्ग पर तीखा व्यंग्य करता है। जो नेताओं से सांठ-गांठ करके आम जनता को दोनों हाथों से लूटने में लगा हुआ है। वह अपने गोदाम को सरकार द्वारा प्राप्त अनाज से भरता रहता है और जनता को गोदाम खाली होने की बात कहता है। लेकिन जब अन्न की कमी और महंगाई बढ़ती है तब वह उसी अनाज को बाजार में ऊँचे दामों में बेच देता है। उसे कानून का तनिक भी भय नहीं क्योंकि उसे बड़े-बड़े अधिकारियों और नेताओं का संरक्षण प्राप्त है।

"दिन रात कृषक को ये मारे
रखता कोठी लंबी कारें
अफसरों से इसकी सांठ-गांठ
नेताओं से भी मिला हाथ
इस देश पर शासन करता है।
पर राष्ट्र-कृतघ्नी होता है।"[2]

इसलिए कवि ने इस विशिष्ट वर्ग यानी पूंजीपति वर्ग की स्वार्थी और आत्मलिप्त नीतियों का पर्दाफाश किया है।

"मन द्रवीभूत हैरान हुआ
रोता देश जब शिशु आंगन
भारत की भावी पीढ़ी का
मटमैले पट से ढका था तन
बच्चे स्कूल में दिखे मगर
कुछ पढ़ते नहीं खेलते थे।
आदर्श प्रतीक गुरु उनके/सप्ताह में दो दिन आते थे।"[3]

गांव सुख-शांति के प्रतीक मानते जाते हैं किन्तु कवि गांव के बच्चों की आर्थिक दशा को देखकर क्षुब्ध है। शैक्षिक सुधार के लिए सरकार इन नेताओं को करोड़ों रुपया देती है। किंतु ये सभी रुपये हजम कर जाते हैं।

जिसके कारण आज भी कई गांव ऐसे हैं जहाँ स्कूल की छत नहीं, छत है तो शिक्षक नहीं, शिक्षक है तो बच्चे नहीं। क्योंकि प्रारंभिक शिक्षा का स्तर अंग्रेजी नहीं हिंदी है। केवल निर्धन गरीब बच्चे ही सरकारी स्कूल में आते हैं। 'गांव' और 'गांव : दशा और दिशा' कविताओं में इन गरीब बच्चों की दयनीय दशा को देखा जा सकता है।

इससे यही स्पष्ट होता है कि राजनीतिक प्रतिनिधि जनता के प्रति प्रतिबद्ध नहीं। इसलिए जनता गरीबी, भूखमरी, महंगाई, बेकारी और बेरोजगारी जैसी आर्थिक समस्याओं से जूझ रही है जिसका कारण राजनीतिक तंत्र है। जो जनता के लिए नीतियाँ तो बनता है किंतु इसका लाभ सत्ताधारी वर्ग उठाता है।

रोटी नहीं कपड़ा नहीं / जन भूख से तड़पें
पानी के लिए आज भी / होती दिखी झड़पें।।''[4]

कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीति के वास्तविक यथार्थ को उद्घाटित किया है। पूरे देश के राजनीतिक घटनाक्रम को देखते हुए जागरूक एवं संवेदनशील कवि निष्क्रिय नहीं बैठ सकता। जब राजनीति विभिन्न रूपों में व्यक्ति और समुदाय के मध्य घुसकर शोषक का काम करने लगे तो जनता को जनतंत्र की विकृतियों जैसे महंगाई, बेरोजगारी, बेकारी, भूखमरी, गरीबी, भ्रष्टाचार, भ्रष्ट नौकरशाह, स्वार्थी नेता आदि से अवगत कराना कवि का उद्देश्य है। क्योंकि राजनीति जनता को छलने का साधन बनी हुई है। जिसके समक्ष जनता स्वयं को लाचार एवं असहाय अनुभव करती है। क्योंकि हमारे देश के नेताओं की स्वार्थी प्रवृत्ति, सत्ता लोलुपता और कुर्सी की चाह ने उन्हें भ्रष्ट और लालची बन दिया है।

''मेरे देश के प्रिय नेताजी ने
प्रण किया रहेंगे सत्ता में
इनके विचार से लगा मुझे
वे जीवित कुर्सी की चिंता में।''[5]

यदि ईमानदार और सिद्धांतवादी नेता राजनीति में प्रवेश करता है तो यह तंत्र उसे भी अपनी चपेट में ले लेता है। जिसका उदाहरण 'रामू और शंकर' कविता में 'शंकर' को देखा जा सकता है। दोनों बचपन के घनिष्ठ मित्र थे। किंतु जब 'शंकर' राजनीति में प्रवेश करने के बाद 'रामू' से वोट मांगने आता है तो रामू उसकी आलोचना करते हुए कहता है कि वह भी अन्य नेताओं की भांति हो गया है। इसका जवाब शंकर अपनी आपबीती सुनाकर देता है। राजनीति के शुरूआती दिनों में वह सिद्धांतवादी, अन्याय के खिलाफ लड़ने वाला ईमानदार और जुझारू व्यक्ति था। किंतु बाद में वह राजनीति के भ्रष्ट कुचक्रों और षड्यंत्रों से स्वयं को बचा न सका तथा अन्य भ्रष्ट नेताओं की जमात में शामिल हो गया।

भ्रष्ट राजनेता चुनाव के दौरान जनता से लुभावने वादे करते हैं। धन का लालच दे कर उनसे वोट लेते हैं। सत्ता प्राप्ति की चाह में वे जाति और धर्म की राजनीति का घिनौना खेल खेलकर जनता को फँसाते

हैं। क्योंकि अशिक्षित और भोली-भाली जनता उनके राजनीतिक षड्यंत्रों को समझ नहीं पाती और उन्हें चुन लेती है।

"सत्ता जब तक नहीं मिली थी / बातें बड़ी ओजस्वी करता।
मिली तो मद में वादे भूले, अब तो आंख मिचौली करता।।"[6]

किंतु सत्ता प्राप्ति के बाद वादे पूरे करना तो दूर उनके दर्शन भी दुर्लभ हो जाते हैं। क्योंकि वह जानता है कि जनता बेवकूफ है जो उसे जाति और धर्म के नाम पर चुनती है।

"तुम जाति देखकर चुनते हो
वह नादानी पर हंसता है।"[7]

इसलिए वह जनता का सेवक नहीं बल्कि जनसेवा का नाटक करने वाला धोखेबाज है। जनता को यह समझना होगा। 'रामू और शंकर' कवि का शंकर जो स्वयं एक नेता है। वह भ्रष्ट नेताओं का कड़वा सच उजागर करता है-

"जन सेवा नहीं सब नाटक है
हम भेष बदलकर अभिनय करते।"[8]

नेताओं द्वारा जनसेवा का अभिनय जनता पर तब भारी पड़ता है जब उनसे स्वतंत्र भारत में मुंह खोलने की आजादी छीन ली जाती है।

"पी गए लाल! 'हया' का बनाकर सूप
दूसरों से बोले कहत, रहो चुप, चुप, चुप
लूट मची है, चाहो तो तू भी लूट
पर मुंह खोलने की किसी को नहीं होगी छूट।
यदि जबान खोलने की दिखाई हिम्मत
तो चुकानी होगी बोलने की कीमत।"[9]

यह कैसा देश है जहाँ जनता को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं। भ्रष्ट और असंवेदनशील नेता और पूंजीपति जनता का शोषण कर रहे हैं। यदि किसी ने उनके खिलाफ कुछ भी बोलने और विरोध करने का प्रयास किया तो जनता को भारी क्षति का सामना करना होगा। यह लोकतंत्र है या राजतंत्र? यह जंगल राज है। जहाँ आम आदमी शासनतंत्र से इतना भयभीत है कि वह अपने साथ होने वाले अन्याय, अनाचार, उत्पीड़न और शोषण का विरोध करने से डरता है।

"मैं तो आम जन हूं।
सो पेट भरने में लीन हूं।

इसलिए नहीं रखता सामर्थ्य करने का विरोध
पर आप तो खाए-पिए हो।
फिर क्यों नहीं करते सत्ता का प्रतिरोध?''[10]

कवि ऐसी आत्मकेन्द्रित जनता पर व्यंग्य करता है जो न कोई फैसला लेती है और न ही कुछ करने की हिम्मत रखती है।

''लगता है खून में हीन ग्रंथि
जड़ जमा चुकी है लोगों में
प्रतिरोध शब्द का अर्थ भूल
विश्वास करे बस भोगों में।।''[11]

जीवन की सार्थकता तभी संभव है जब मनुष्य निष्क्रिया को तिलांजलि देकर कर्मठता की ओर अग्रसर हो किंतु जनता स्वयं के साथ होने वाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज नहीं उठती। अंग्रेजी पढ़ते हैं लेकिन उनकी मानसिकता अभी भी भ्रष्ट नेताओं और पूंजीपतियों की दास बनी हुई है। क्योंकि वे धन-वैभव के लोभी हैं। इसलिए प्रतिरोध नहीं करते।

यह जनता की राजनैतिक निष्क्रियता का ही दुष्परिणाम है कि कानून व्यवस्था, पुलिस प्रशासन और न्याय व्यवस्था के होते हुए भी महिलाएँ स्वयं को सुरक्षित महसूस नहीं करती। क्योंकि इन सबके होते हुए भी महिलाओं की इज्जत-आबरू सरेआम लूटी जाती हैं किंतु कोई कृष्ण बनकर उसकी लाज बचाने नहीं आता। बल्कि सभी इस दृश्य के मूकदर्शक बनने में लज्जा महसूस नहीं करते। दरअसल यह जनता के भीतर संवेदना और मानवीयता का अंत है।

''देखा मैंने कल परसों ही
आंखों के आगे लाज लुटी
कैसे नोचा? कैसे फाड़ा?
देखने हेतु जनता उमड़ी।।''[12]

महिलाएँ खौफ के साये में जी रही हैं क्योंकि कातिल और अपराधियों को सरकार और नेताओं का संरक्षण प्राप्त है। इसलिए जुर्म घटने के बजाए लगातार बढ़ रहे हैं।

''छुट्टे पशुओं की तरह घूमें
कातिल इस देश में डगर-डगर
सरकार उन्हें देखे प्रतिदिन
पर करती नहीं उन्हें अंदर
यदि चला गया अंदर, भी तो

नेता ही शोर मचाता है।
'झूठा आरोप' कह करके
हर तरह की मदद पहुंचाता है।"[13]

उनकी कविताएं राजनीतिक पूंजीवादी जनतंत्र का कुरूप और घिनौना चेहरा दिखाती हैं। इसलिए कवि चिंतातुर स्थिति में है कि पता नहीं वह दिन कब आएगा जब जनता अपनी चुप्पी तोड़ेगी। अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करेंगी। कवि का जनता से यही अनुरोध है कि यदि परिवर्तन चाहते हो तो संघर्ष करो।

"अनुरोध है मेरा सबजन से
चुपचाप अन्याय को मत देखो
छोटे-मोटे के स्वार्थ हेतु
तुम स्वत्व को अपने मत बेचो
शोषक, शोषित के प्रश्नों पर
चुप रहना अब तुम बंद करें।"[14]

यह तभी संभव है जब जनता, स्वयं अन्याय के खिलाफ 'सोचे, उठे और लड़ें'। 'अप दीप्पों भव' के मार्ग को अपनाओं। बदलाव तभी संभव है।

"इसलिए समय है खुद जागो
विश्वास करो परिवर्तन में
जब लड़ोगे अपने हक खातिर
होगा सुधार तब जीवन में"[15]

अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी होगी। अपना मसीहा स्वयं बनना होगा। अपनी चेतना का परिष्कार करना होगा ताकि 'समतावादी भारत' का निर्माण संभव किया जा सके। जहाँ धर्म, लिंग, जाति, वर्ग आदि के आधार पर भेदभाव न हो।

"जिसमें न किसी का शोषण हो
ना कोई 'जन' को लूट सके
मानवता का ही पोषण हो।"[16]

इसलिए कवि की दृष्टि राजनीतिक निरपेक्ष नहीं राजनीतिक सापेक्ष है। एक ओर उन्होंने कविताओं में राजनीतिक यथार्थ चित्र खींचकर आम जन को देश की राजनीतिक परिस्थितियों से अवगत कराया है तो दूसरी ओर जनता को परिवर्तन की प्रेरणा दी है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि कवि ने गहरी राजनीतिक समझ के साथ राजनीतिक कविताओं का सृजन किया है। आम आदमी की मुश्किलों के लिए केवल एक ताकत ही जिम्मेदार है और वह है सत्ता और राजनीति। जिसकी डोर पूंजीपति वर्ग के हाथों में है। इसलिए उनकी कविताएं सत्ताधारी पूंजीपति वर्ग के खिलाफ आम जन की शक्ति और साहस को रेखांकित करती है। उनकी कविताएँ राजनीतिक विमर्श के माध्यम से लोकतंत्र की कई परतें खोलती हैं। जो जनतंत्र में आम आदमी की तकलीफों का दस्तावेज प्रतीत होती हैं। उनकी कविताएं साठोत्तरी हिंदी कविता की याद दिलाती हैं। इसलिए उन्हें 'राजनीतिक चेतना का कवि' कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

संदर्भ :

1. हटो हटो! कुछ कहने दो, कैलाश नारायण तिवारी, स्वराज प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2016, पृ.16
2. वही, पृ.17
3. वही, पृ.19
4. वही, पृ.55
5. वही, पृ.33
6. वही, पृ.123
7. वही, पृ.93
8. वही, पृ.111
9. वही, पृ.59
10. वही, पृ.57
11. वही, पृ.31
12. वही, पृ.31
13. वही, पृ.31
14. वही, पृ.42
15. वही, पृ.23
16. वही, पृ.42